धर्मों की विकासवादी अवधारणा

प्रदीप कांत चौधरी

धर्मों को कई दृष्टिकोणों से अध्ययन का विषय बनाया जा सकता है, परंतु एक इतिहासकार के लिए धर्मों को उनके सामाजिक-ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझने की कोशिश सबसे महत्त्वपूर्ण होती है। मानव-जीवन की परिस्थितियों और पर्यावरण का उसके धर्मों पर किस हद तक असर दिखाई देता है, यह धर्म के इतिहासकारों के लिए सर्वोच्च प्रश्न रहा है। प्राचीन भारत के विख्यात इतिहासकार कृष्ण मोहन श्रीमाली की यह पुस्तक भारत में धर्म-अध्ययन के क्षेत्र में एक बहुत बड़े अंतराल को भरने का प्रयास है। कुल 372 पृष्ठों की इस पुस्तक में नौ अनूदित लेखों को शामिल किया गया है। दूसरी तरह से कहें तो इस पुस्तक में चार दशकों तक विद्यार्थियों की कई पीढ़ियों को पढ़ाने से उपजी प्रज्ञा अंतर्निहित है।

अपनी अध्ययन विधि को विकासवाद और भौतिक पृष्ठभूमि पर आधारित करते हुए श्रीमाली कहते हैं कि डार्विन के विकासवादी सिद्धांत के अनुरूप धर्म सहित सभी मानवीय संस्थाएँ निरंतर परिवर्तित होती रहती हैं। जो सबल है वह टिकता है और निर्बल का अवसान हो जाता है। मानव समाज की तरह ही देवताओं के यश और प्रभाव में भी निरंतर उत्थान और पतन होता रहता है। और दूसरी बात, धर्म समाज से कटा कोई स्वायत्त क्षेत्र नहीं। यह सामाजिक-आर्थिक प्रक्रियाओं से प्रभावित होता रहता है। मनुष्य के खाद्य-संग्रहण से पशुचारण और फिर कृषि की अवस्था में जाने के साथ-साथ उसके देवी-देवताओं और कर्मकाण्डों के स्वरूप में सहज परिवर्तन होते रहते हैं। ऋग्वैदिक इंद्र गोपति से उत्तर वैदिक काल में भूपति बने और फिर पुराणों एवं बौद्ध साहित्य में कामुक और विलासी राजा की छवि हासिल की। तेजस्वी वरुण जो असुर यानी जादुई शक्ति से सम्पन्न और ऋत यानी सामाजिक सद्भाव के रक्षक थे, वह उत्तर वैदिक काल तक धूमिल होने लगे। ऋग्वेद में अज्ञात शिव भी रूद्र के व्यक्तित्व को आत्मसात् कर महादेव बनते हैं और विष्णु ने उपेंद्र (इंद्र के सहयोगी) से महेंद्र (इंद्र से बड़े देव) का पद हासिल किया। शिव और विष्णु के आसपास अन्य देवी देवताओं का संघटन होता है और इनके अलग-अलग सम्प्रदाय सशक्त हो जाते हैं। तीसरी सदी सा.यु. के बाद भूमि अनुदानों और सामंती प्रवृत्तियों के विस्तार के साथ भक्ति और तंत्र पूरे धार्मिक परिवेश को आच्छादित कर लेते हैं।

क्या भारत में सम्प्रदायों के बीच कभी ख़ूनी संघर्ष नहीं हुआ? क्या इस्लाम भारत में अपने आगमन के बाद सिर्फ़ धर्मांतरण और संघर्ष में लगा रहा या इस्लामी संतों ने स्थानीय संस्कृतियों को

प्राचीन भारतीय धर्मों का इतिहास

कृष्ण मोहन श्रीमाली

प्राचीन भारतीय धर्मों का इतिहास (2017)
कृष्ण मोहन श्रीमाली
ग्रंथशिल्पी प्रकाशन, दिल्ली, 2017
पृ. 372, रु.1025

अंगीकार भी किया? कैसे यहाँ के निम्न सामाजिक समुदाय के लोगों ने अपने भजन और लोक देवताओं के माध्यम से अपनी अलग चिंतन-शैली की छाप छोड़ी— इन सब का रहस्योद्घाटन इस पुस्तक के केंद्र में है। यह पुस्तक भारतीय धर्मों का व्यवस्थित सामाजिक इतिहास लिखे जाने का एक सराहनीय प्रयास है, जिसमें पूरे प्राचीन भारत की धार्मिक प्रवृत्तियों की समीक्षा की गयी है। दिल्ली विश्वविद्यालय में भारतीय धर्मों के इतिहास के सर्वाधिक लोकप्रिय शिक्षक के रूप में प्रो़फ़ेसर श्रीमाली का व्याख्यान जो लोग कभी सुन नहीं पाए, उनके लिए यह पुस्तक एक छोटी-सी सौग़ात है।

इतिहास-लेखन हमेशा ही इतिहासकारों के विश्व-दृष्टिकोण से प्रभावित होता है। इसीलिए बीस के दशक में हड़प्पाई सभ्यता से संबंधित साक्ष्यों के सामने आने के बाद से ही विभिन्न प्रकार की व्याख्याएँ प्रस्तुत की गयी हैं। जहाँ जॉन मार्शल ने इसे देवियों की प्रधानता वाला धर्म माना, वहीं के.एन. शास्त्री ने पुरुष-तत्त्व की प्रधानता का दावा किया और ग्रेगरी पोसेल ने संयुक्त पुरुष-नारी देवत्व की प्रस्थापना रखी। इसमें कोई संदेह नहीं कि मातृदेवी की उपासना के चिह्न आज से पाँच हज़ार साल पूर्व के स्तरों से पश्चिमोत्तर भारत के कई स्थलों से मिलने लगते हैं। हड़प्पा सभ्यता के स्थलों से स्त्री-मृण्मूर्तियों के कई स्वरूप मिलते हैं। इसी प्रकार कई स्थलों से मुहरों पर ऐसे चित्रण मिले हैं जिन्हें 'पशुपति' की संज्ञा दी गयी है। हड़प्पाई स्थलों से वृक्षपूजा, पशुपूजा, पक्षीपूजा, पवित्र-स्नान, अग्निपूजा, गण्डा-तावीज, आदि जीववादी और कर्मकाण्डीय आचरणों के साक्ष्य भी प्राप्त होते हैं।

इस रचना में इस बात को रेखांकित किया गया है कि कई इतिहासकार हड़प्पा को आधुनिक हिंदू धर्म की मान्यताओं से जोड़ने के लिए, शिव, अर्धनारीश्वर, पुरुष-प्रकृति द्वैध, अग्निपूजा, एकशृंगी, यहाँ तक कि अवतारवाद के तत्त्वों को खोज निकालने के लिए अतिरिक्त प्रयास करते दीखते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि हड़प्पा के धर्म में परवर्ती भारतीय धर्मों के कई तत्त्व मौजूद हैं, पर उन्हें सीधे हिंदू धर्म मान लेने के प्रयास की लेखक ने आलोचना की है। यह पुस्तक पाठकों से आग्रह करती है कि हड़प्पाकालीन धर्म को उस समय की अर्थव्यवस्था और सामाजिक संरचना के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में हड़प्पाकालीन धर्म को परवर्ती हिंदू धर्म में फ़िट करने की कोशिश एक पूर्वाग्रह से ग्रस्त क़वायद है।

हड़प्पा और आगे के भारतीय इतिहास की समझ ऋग्वेद के मूल्यांकन से जुड़ी हुई है। ऋग्वेद के रचयिता कौन थे, वे भारतीय इतिहास के पटल पर कब आये— यह इतिहासकारों के बीच महत्त्वपूर्ण प्रश्न रहा है। इस दृष्टि से ईरान से प्राप्त *अवेस्ता* नामक ग्रंथ के साथ ऋग्वेद का तुलनात्मक अध्ययन रोचक हो जाता है। दोनों ग्रंथों में अद्‌भुत समानताएँ हैं। जैसे, दोनों के पाठों की संरचना और पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरण एवं संचारण विधि में भारी समानता है। शैलीगत साम्य के अतिरिक्त दोनों के बीच कालक्रमिक अनुपूरकता भी देखी जा सकती है जो लगभग 1500–1000 सा.यु.पू. के बीच जाती है। यह साम्य कई अमूर्त अवधारणाओं में भी दिखाई देता है, जैसे वैदिक ऋत/अवेस्ती ऑश, वैदिक यज्न/अवेस्ती यस्न, मंत्र/मथ्र, होतृ/जहौतर, अर्थवन/आथ्रोअन, बरहिम/बरसोम आदि। दोनों के देव

समूहों में साम्य वैदिक मित्र–अवेस्ती मिथ, अग्नि–आतर, सोम–हाओम, यम–यिम, आदि में परिलक्षित है। दोनों संस्कृतियों में पशुबलि और उस अवसर पर सुरापान का वर्णन मिलता है। परंतु देव और दानव के संदर्भ में काफ़ी विवाद रहा है। अवेस्ता में अहुर/असुर पूज्य है जबकि ऋग्वेद में असुर देवों के विरुद्ध हैं। वैसे वरुण का संबंध असुर से भी है, जो जादुई शक्ति से सम्पन्न व्यक्ति का प्रतीक था। वैसे अवेस्ता के दाएव अहुरों के बैरी नहीं थे। प्राय: वे क़बायली देशांतरण के किसी पूर्ववर्ती चरण के देवता थे, और बाद का ज़रथुष्ट्र धर्म सम्भवत: उनके साथ तालमेल बैठाने की कोशिश कर रहा था। अवेस्ता और ऋग्वेद के बीच मतांतर सा.यु.पू. 2000–1500 के बीच देशांतरण का संकेत करते हैं, जब भारतीय आर्य सप्तसिंधु की तरफ़ बढ़ गये। इसीलिए कालांतर में वरुण–ऋत आधारित धर्म का स्थान इंद्र आधारित धर्म ने ले लिया।

पुस्तक का तीसरा अध्याय धर्म और समाज के अंतर्संबंधों की विवेचना करता है। मैक्स वेबर जैसे चिंतकों ने अपनी–अपनी शैली में यह दिखाया है कि धार्मिक संस्थाओं का गठन समाज की आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से प्रभावित होता है। जहाँ उच्च वर्ग अपने वर्गीय हितों को धर्म संबंधी विचारों से सुदृढ़ करता है वहीं शिल्पियों, व्यापारियों और औद्योगिक उद्यमियों की धार्मिक मान्यताओं में व्यक्तिगत मोक्ष के प्रति विशेष आग्रह देखा जा सकता है। धार्मिक प्रवृत्तियों में भौगोलिक और आर्थिक पृष्ठभूमि का प्रतिबिम्बन देखा जा सकता है। वैदिक साहित्य का अध्ययन दिखाता है कि कैसे क़बायली समाज के वर्ण–वर्ग समाज में रूपांतरण के साथ ही अद्वैतवादी चिंतन प्रबल होने लगता है।

क्या धर्म तार्किक हो सकता है? तर्क और विवेक का धर्म में क्या स्थान है इसकी चर्चा अध्याय चार में की गयी है। इस पैमाने पर यदि मूल्यांकन किया जाए तो बौद्ध और जैन धर्म के कई आयाम कहीं अधिक तार्किक नज़र आते हैं। स्वयं बाइबिल भी इलहाम या प्रकाशना (रिविलेशन) पर आधारित है, इसलिए पश्चिमी दुनिया में धर्म का तर्क से असहज संबंध रहा है। शायद इसीलिए मैक्स मूलर के समय से ही पश्चिमी विद्वानों ने ब्राह्मणवादी सम्प्रदायों को अधिक महत्त्व दिया है और वेद विरोधी सम्प्रदायों को 'हेट्रोडॉक्स' कह कर किनारे कर दिया है। फिर भी यदि विवेक की बात की जाए तो बौद्ध और जैन धर्मों के योगदान की अनदेखी नहीं की जा सकती। जैन धर्म के स्यादवाद एवं सप्तभंगीनय, तथा बौद्ध धर्म के उदार संशयवाद, विभज्ज्वाद, और पटिच्चसमुप्पाद से यह प्रदर्शित होता है कि छठी शताब्दी सा.यु.पू. के इन नवीन धर्मों ने इतिहास में पहली बार तर्क और विवेक पर आधारित धर्म की एक वैकल्पिक चिंतन प्रणाली प्रस्तुत की जिसका असर अनुयायियों के सामाजिक आधार पर भी पड़ा। इन नवीन धर्मों की क्रांतिकारिता का आधार मूलत: इनकी चिंतन–शैली में ही निहित है।

काशी प्रसाद जायसवाल जैसे इतिहासकारों ने मौर्योत्तर युग को अंधकार युग कहा है और शक–कुषाणों को विदेशी होने के कारण एक खलनायक और मूर्तिभंजक के रूप में पेश किया है। श्रीमाली ने यह दिखाया है कि इस युग में न केवल बौद्ध धर्म ने प्रगति की, बल्कि ब्राह्मणवाद के कई महत्त्वपूर्ण पहलुओं का विकास भी इसी काल में हुआ। यह युग शिव, स्कंद, दुर्गा, कृष्ण–संकर्षण आदि की आराधना, अवतारवाद के सिद्धांत का जन्म, मंदिरों और बौद्ध विहारों का आरम्भ, विशाल पैमाने पर मूर्तिकला के विकास, *रामायण* और *महाभारत* जैसे महाकाव्यों की रचना आदि जैसी सांस्कृतिक उपलब्धियों से भरा हुआ है।

राष्ट्रवादी इतिहासकारों के बीच इतिहास के किसी कालखंड को स्वर्णयुग और अंधकार युग कहने की परम्परा रही है। काशी प्रसाद जायसवाल जैसे इतिहासकारों ने मौर्योत्तर युग को अंधकार युग कहा है और शक-कुषाणों को विदेशी होने के कारण एक खलनायक और मूर्तिभंजक के रूप में पेश किया है। श्रीमाली ने यह दिखाया है कि इस युग में न केवल बौद्ध धर्म ने प्रगति की, बल्कि ब्राह्मणवाद के कई महत्त्वपूर्ण पहलुओं का विकास भी इसी काल में हुआ। यह युग शिव, स्कंद, दुर्गा, कृष्ण-संकर्षण आदि की आराधना, अवतारवाद के सिद्धांत का जन्म, मंदिरों और बौद्ध विहारों का आरम्भ, विशाल पैमाने पर मूर्तिकला के विकास, *रामायण* और *महाभारत* जैसे महाकाव्यों की रचना आदि जैसी सांस्कृतिक उपलब्धियों से भरा हुआ है। कुषाणों ने अपने को भारतीय संस्कृति के साथ इस हद तक एकीकृत कर लिया था कि उसके शासकों का नाम रुद्रदामन, रुद्रसिंह, पृथ्वीषेण, यशोदामन, विजयसेन, रुद्रसेन, विश्वसेन आदि था। श्रीमाली सवाल पूछते हैं, 'क्या उनका अपराध यह है कि इस वंश के एक से अधिक शासकों का नाम वासुदेव था? क्या यह भी उनका अपराध था कि उन्होंने अपने सोने और ताम्बे के सिक्कों की लम्बी शृंखला में विभिन्न समुदायों के देवी-देवताओं का निरूपण किया?' संख्या की दृष्टि से देखा जाए तो कुषाणों के सिक्कों पर बौद्ध प्रतीकों से कई गुना ज़्यादा निरूपण शैव प्रतीकों का हुआ है। फिर भी राष्ट्रवाद के एक ख़ास ब्रांड को प्रोत्साहित करते हुए भारशिवों को 'हिंदू साम्राज्यवाद' का नायक बनाया गया है। आर्थिक दृष्टि से मौर्योत्तर काल में विदेश व्यापार चरम शिखर पर था। नगरीकरण का सबसे मोटा स्तर इसी काल से मिलता है। अतः सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि सभी दृष्टियों से चमत्कृत करने वाले काल को अंधकारयुग की संज्ञा देना धार्मिक अंधराष्ट्रवाद के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता।

धर्म, विचारधारा और समाज पर केंद्रित अध्याय में पिछले दो सदियों के दौरान धर्म के अध्ययन में हुए विकास की समीक्षा की गयी है। अध्ययन की दृष्टि से इसे चार चरणों में बाँटा गया है : 1910 तक प्रथम चरण में भाषा विज्ञान और नृजाति विज्ञान का बोलबाला रहा और मिथकों के अध्ययन एवं डार्विनवादी विकासवाद की अवधारणा के अंतर्गत सर्वात्मवाद, एकेश्वरवाद, जादू-टोना, टैबू, हाई गॉड, आदि विषयों के विश्लेषण ने इसे एक स्वतंत्र अकादमिक कार्यक्षेत्र में स्थापित कर दिया। 1910-20 के दूसरे चरण ने धर्म के समाजशास्त्रीय अध्ययन को प्रोत्साहित किया। मैक्स वेबर और दुर्खीम जैसे विद्वानों ने धर्म की सामाजिक पृष्ठभूमि के विश्लेषण को नयी ऊँचाई पर पहुँचा दिया। तीसरा चरण मैलिनोव्सकी और रैडक्लिफ़ ब्राउन की वृत्तिमूलकवादी (फ़ंक्शनलिज़म) अवधारणाओं से प्रेरित रहा है। और 1950 के बाद से अब तक के काल में लेवी स्त्रॉस, विक्टर टर्नर, रोडनी निढम और रूडोल्फ ओटो जैसे विद्वानों ने अपने शोधों से समृद्ध किया। इस चरण में भी धर्म के मनोगत और वस्तुगत विश्लेषण के बीच बहस चलती रही। क्या धर्म मानव मन के अंदरूनी अनुभवों की परिघटना है जो व्याख्याओं से परे महज़ अनुभूतिजन्य है या वह एक सामाजिक संस्था है जिसे सामाजिक-आर्थिक एवं अन्य भौतिक कारक प्रभावित करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इस विकास क्रम का असर भारतीय धर्मों के अध्ययन पर भी पड़ा है। इस क्षेत्र में डी.डी. कोसम्बी और एन.एन. भट्टाचार्य ने धर्म के अध्ययन को भौतिक पृष्ठभूमि से जोड़ने में बहुत बड़ी भूमिका निभायी। चाहे वह प्रागैतिहासिक काल हो या हड़प्पा, वैदिक हो या बौद्ध-जैन धर्मों का उदय काल, इनकी अंतर्दृष्टि ने भारतीय धर्मो के अध्ययन के क्षितिज को व्यापक बनाया। इस परम्परा को कई विद्वानों ने आगे बढ़ाया जिसमें घुर्ये, राम शरण शर्मा, रोमिला थापर, सुकुमारी भट्टाचारजी, सुवीरा जायसवाल, वी.एस.पाठक, उर्मिला भागोवालिया, देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय, आर.एन. नंदी और स्वयं कृष्ण मोहन श्रीमाली का व्यापक योगदान है।

अध्याय सात धर्म अध्ययन के क्षेत्र में कोसम्बी के योगदानों को समर्पित है। भारत की आज़ादी के बाद जहाँ भारतीय विद्या भवन के तत्त्वावधान में चरमपंथी हिंदूवादी इतिहास लेखन को स्थापित

करने के लिए एड़ी चोटी का ज़ोर लगाए जा रहे थे, वहीं कोसम्बी अपने कृतित्व से इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा को स्थापित करने का प्रयास कर रहे थे। कोसम्बी ने साहित्यिक और पुरातात्विक स्रोतों, भाषा विज्ञान और नृजाति विज्ञान आदि के सम्मिश्रण से एक संश्लिष्ट विधि को जन्म दिया। इसे उन्होंने 'कंबाइंड मेथड्स' का नाम दिया। यह कोसम्बी-प्रणाली भारतीय इतिहास लेखन में उनका अमूल्य योगदान है। कोसम्बी ने कई मार्क्सवादी प्रस्थापनाओं का विरोध कर अपनी बौद्धिक गम्भीरता का परिचय भी दिया। धर्म-अध्ययन का क्षेत्र उनकी कई प्रस्थापनाओं का सदा आभारी रहेगा जैसे 'समान ढंग से जीवन बिताने वाले लोग समान पूजा-पद्धतियाँ भी निकाल लेते हैं' या फिर 'देवताओं का संघर्ष सामान्यत: उनके पूजक समूहों के संघर्ष का द्योतक होता है', या फिर 'तीर्थ यात्राएँ मूलत: प्रागैतिहासिक जनजातीय समूहों के मौसमी स्थानांतरण की स्मृति है'। भगवद्गीता के संदर्भ में कोसम्बी ने धर्म और उसकी वर्गीय पृष्ठभूमि को रेखांकित करने का प्रयास किया। इस अध्याय में मर्सिया ऐलियाडे और कोसम्बी की पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन भी किया गया है। कोसम्बी की तुलना में ऐलियाडे का लेखन विषयवस्तु और संख्या की दृष्टि से बहुत विस्तृत है। लेकिन जहाँ ऐलियाडे के लेखन की बृहत् समीक्षा की जा चुकी है, वहीं कोसम्बी के योगदानों की चर्चा अभी बहुत संक्षिप्त है। विल्हेम हाल्बफ़ौस और अर्जुन अप्पादुरै ने भारतीय धर्मों के इतिहास पर अपनी समीक्षा में उनका उल्लेख भी नहीं किया है। शिरीन रत्नागर ने तो कोसम्बी के पुरातात्विक कार्यों का उपहास तक उड़ाया है। परंतु प्रसिद्ध पुरातत्वशास्त्री अल्चिन ने यह स्वीकार किया है कि भारतीय जनजातियों को प्राचीन भारतीय सामाजिक सरंचना के साथ जोड़ने का काम कोसम्बी की बहुत बड़ी उपलब्धि है। सूक्ष्म पाषाणी औजारों और महापाषाणी अवशेषों को फ़ील्डवर्क के माध्यम से खोज कर उनको भारत के बृहत इतिहास में पिरोना एक अनूठा योगदान है। कोसम्बी एक ऐसे व्यक्तित्व थे जिनसे न तो 'आधिकारिक मार्क्सवादी' कभी ख़ुश हुए न मार्क्सवाद विरोधी। लेकिन कोसम्बी ने अपने अल्प लेखन में इतिहास की व्याख्या में धर्म के दुरुपयोग की चेतावनी और आमजन के इतिहास लेखन के लिए समग्र पद्धति की रूपरेखा तैयार कर दी थी।

अध्याय आठ वेंडी डोनिगर की पुस्तक *द हिंदूज : एन ऑल्टरनेटिव हिस्ट्री* की समीक्षा है। इसमें वॉल्टेयर की तथाकथित उक्ति को चरितार्थ किया गया है कि 'मैं तुमसे असहमत होते हुए भी तुम्हारे बोलने की आज़ादी को अपने मरते दम तक बचाऊँगा'। वेंडी डोनिगर के खिलाफ दक्षिणपंथी तत्त्वों के अभियान की श्रीमाली ने कड़ी भर्त्सना की है, लेकिन उनके लेखन से व्यापक असहमति भी दिखाई है। श्रीमाली कहते हैं कि वेंडी डोनिगर ने हिंदू धर्म की जो रूपरेखा प्रस्तुत करने की कोशिश की है उसमें न तो इतिहास की

श्रीमाली कहते हैं वेंडी डोनिगर ने हिंदू धर्म की जो रूपरेखा प्रस्तुत करने की कोशिश की है उसमें न तो इतिहास की कोई चेतना है न ही समाज-विज्ञान की व्यापक अध्ययन विधियों का कोई सम्मान। ... वह न तो कोई इतिहास पर कोई गम्भीर शोध है और न ही धार्मिक इतिहास के प्रति कोई आलोचनात्मक दृष्टि। यह महज पश्चिम के पुस्तक बाज़ार में बेचने के लिए एक माल है जिसे प्रचार की दृष्टि से विवादास्पद बनाया गया है। भारतीय दक्षिणपंथियों द्वारा धमकी और विरोध के बावजूद दरअसल देखा जाए तो वेंडी की मूल समझ भारत की बौद्ध और जैन समेत अन्य सभी परम्पराओं की क़ीमत पर हिंदू धर्म की वर्चस्वकारी छवि बनाने की है।

कोई चेतना है न ही समाज-विज्ञान की व्यापक अध्ययन विधियों का कोई सम्मान है। सिर्फ़ संस्कृत के ज्ञान के आधार पर उन्होंने हिंदू धर्म का तथाकथित वैकल्पिक इतिहास लिखने की जो कोशिश की है उसे न तो गम्भीर ऐतिहासिक शोध कहा जा सकता है और न ही धार्मिक इतिहास के प्रति कोई आलोचनात्मक दृष्टि। यह महज पश्चिम के पुस्तक बाज़ार में बेचने के लिए एक माल है जिसे प्रचार की दृष्टि से विवादास्पद बनाया गया है। भारतीय दक्षिणपंथियों द्वारा धमकी और विरोध के वावजूद दरअसल देखा जाए तो वेंडी की मूल समझ भारत की बौद्ध और जैन समेत अन्य सभी परम्पराओं की क़ीमत पर हिंदू धर्म की वर्चस्वकारी छवि बनाने की है। इसमें न केवल हिंदुओं की धर्मपरायणता का गुणगान किया गया है, बल्कि इतिहास के सामान्य कालक्रमीय विवरणों की भी अवहेलना की गयी है। भारत के सांस्कृतिक राष्ट्रवादियों की ही तरह वे 'हिंदू' और 'भारतीय' के बीच के अंतर को सम्पूर्ण रूप से धूमिल कर देती हैं। भीमबेटका से लेकर हड़प्पा सभ्यता तक हर जगह वह हिंदू धर्म का दर्शन करती हैं। उनके लिए वेदों से पुराणों की यात्रा में न कोई संक्रमण है न परिवर्तन। श्रीमाली कहते हैं कि यह पुस्तक एक बार फिर केवल हिंदुओं के योगदान की तरफ़ ध्यान केंद्रित करने का भीषण प्रयास है। यह पुस्तक अपनी सूचनाओं के लिए मूल शोधग्रंथों की अपेक्षा सामान्य पाठ्य पुस्तकों पर आधारित है। कुल मिला कर आजकल अमेरिकी विश्वविद्यालयों में भारत अध्ययन के क्षेत्र में जो हल्कापन आया है, यह पुस्तक श्रीमाली की नज़र में उसकी बानग़ी भर है।

आलोच्य रचना न केवल एक शिक्षक के रूप में श्रीमाली के अनुभवों का सार प्रस्तुत करती है बल्कि *महाभारत* के इस संदेश का प्रचार करती है कि सम्यक धर्म वही होता है जो दूसरे धर्म से नहीं टकराता। आज इस संदेश को घर-घर पहुँचाने की ज़रूरत है। भविष्य के विषय में चेतावनी देते हुए श्रीमाली कहते हैं कि इस अध्ययन-प्रणाली को बचाने की सबसे बड़ी चुनौती यह है कि भारत की विभिन्नता और बहुआयामी सांस्कृतिक विविधता को समाप्त कर कहीं यहाँ एकाश्म-हिंदुत्ववादी छवि हावी न हो जाए। कुछ अध्यायों का अनुवाद जटिल है जिसे और बेहतर बनाने की ज़रूरत थी। नरेश गोस्वामी द्वारा किया गया आख़िरी अध्याय का अनुवाद सबसे अच्छा है। इस पुस्तक से धर्म के क्षेत्र में हिंदी भाषी शोधकर्ताओं को भारी लाभ मिलेगा।